टिप्पणियाँ

20

विष्णुसूक्त और मित्रावरुणसूक्त

वेदों में ज्ञानराशि और शब्दराशि है। वेदः अपौरुषेय परम्परा से ही है। प्राणिमात्र के लिये इष्टप्राप्ति के लिये और अनिष्ट परिहार के लिये अलौकिक उपाय वेद ही बताते है। वेद के द्वारा बताये गये उपाय प्रत्यक्ष से अथवा अनुमान प्रमाण से नही जाने जा सकते है। केवल वेद शब्दों के द्वारा ही उन उपायों को जान सकते है। ईश्वर भी सृष्टि की रचना करने में वेद ज्ञान को आश्रित करके ही जगत् का निर्माण किया। वह यह वैदिक ज्ञान भ्रान्तियों से और प्रमाद से रहित है। और वह वेद प्रयोग भेद से यज्ञ निर्वाहक होने से ऋक् यजु साम से तीन भेद किये गए है। और वह ही त्रयी कहलाते है। प्रतिवेद को पुनः मन्त्र और ब्राह्मण इन दो भागो में विभक्त किया गया है वेद विद्वानों के द्वारा। मन्त्र ही संहिता यह भी प्रचार किया गया है। मन्त्र तो यज्ञ आदि अनुष्ठान कारणभूत द्रव्यदेवता आदि का प्रकाशक है। ब्राह्मण तो विधि अर्थवाद आदि प्रतिपादक करने से अनेक प्रकार के है। स्तुति करने वाला ऋग्वेद है। उस ऋग्वेद का मण्डलरूप से और अष्टकरूप से दो भागो में विभाजित किया है। वहा मण्डल रूप से विभाग होने पर यह सूक्त ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में एक सौ चौवनवाँ (१.१५४) सूक्त है। यह मन्त्रात्मक ऋग्वेद का अंश है।

इस पाठ में विष्णुसूक्त और मित्रावरुणसूक्त को पाठ्य के रूप में लिया गया है। पूर्व भाग में विष्णुसूक्त विद्यमान है, और उत्तरार्ध भाग में मित्रावरुणसूक्त लिया गया है।

विष्णुसूक्त में भी विष्णुदेवता की स्तुति की गई है। यहाँ विष्णु की महानता का वर्णन किया गया है। इस सूक्त के ऋषि दीर्घतमा औचथ्य, छन्द विराट् त्रिष्टुप्, और देवता विष्णु है। इस सूक्त में विष्णु की शक्ति को प्रकट किया गया है। विष्णु के निकट होने के लिये जो कोई भी प्रार्थना करता है तो वे प्रकट हो जाते है। इस पाठ में विष्णुसूक्त में विद्यमान छः मन्त्रों का वर्णन किया गया है।

टिप्पणियाँ

उद्देश्य

इस पाठ को पढकर आप सक्षम होंगे :

- सूक्त में स्थित मन्त्रों के संहिता पाठ को जान पाने में;
- सूक्त में विद्यमान मन्त्रों के पदपाठ को समझ पाने में;
- सूक्तस्थ मन्त्रों का अन्वय कर पाने में;
- सूक्तस्थ मन्त्रों की व्याख्या कर पाने में;
- सूक्त में विद्यमान मन्त्रों का सरलार्थ जान पाने में;
- मन्त्र में स्थित व्याकरण पदों को समझ पाने में;
- सूक्त का तात्पर्य और सूक्त के तत्त्व जान पाने में;
- सूक्त के अर्थ को जानकर सूक्त की महिमा समझ पाने में;
- वैदिक शब्दों को जान पाने में;
- वैदिक और लौकिक के भेद को समझ पाने में;
- कुछ वैदिक रूपों को जान पाने में।

विष्णुसूक्त

20.1 मूलपाठ विष्णुसूक्त

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः॥१॥

प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणे-ष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा॥२॥

प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थ-मेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः॥३॥

यस्य त्री पूर्णा मधुना पदा-न्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्या-मेको दाधार भुवनानि विश्वा॥४॥

टिप्पणियाँ

तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः॥५॥

ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि॥६॥

20.1.1 मूलपाठ (विष्णुसूक्त) की व्याख्या

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः॥१॥

पदपाठ - विष्णोः। नु। कम्। वीर्याणि। प्र। वोचम्। यः। पार्थिवानि। विऽममे। रजांसि॥ यः। अस्कभायत्। उत्ऽतरम्। सधऽस्थम्। विऽचक्रमाणः। त्रेधा। उरुऽगायः॥१॥

अन्वय - हे मनुष्या यः पार्थिवानि रजांसि नु विममे य उरुगाय उत्तरं सधस्थं त्रेधा विचक्रमाणोऽस्क भायत्तस्य विष्णोर्वीर्याणि प्रवोचमनेन कं प्राप्नुयां तथा यूयमपि कुरुत ॥१॥

व्याख्या - हे मनुष्यों विष्णु के व्यापकशीलदेव के पराक्रम को हम बहुत शीघ्र ही कहते है। वे किसकी रचना करता है तो कहते है की तीनो लोक अग्नि, वायु आदित्यरूप लोकों का विशेष रूप से निर्माण करता है। यहाँ पर तीनो लोक भी पृथिवीवाची शब्द है। उससे तीनो लोक का पृथिवीशब्दवाच्यत्व है। और जो विष्णु प्रलय के अनन्तर एक साथ के स्थान को तीन प्रकार से विशेष कर कम्पाता हुआ रोकता है, यह अर्थ है। इसके द्वारा ही अन्तरिक्ष आश्रित तीनो लोक की रचना की। अथवा जो विष्णु पृथिवीसंबन्धि पृथिवी के नीचे के सात लोकों को अनेक प्रकार से निर्मित किया है। रज्ः शब्द लोकवाची, 'लोका रजांस्युच्यन्ते' ये यास्क ने कहा। और जिसने प्रलय के बाद एक साथ के स्थान को तीन प्रकार से विशेष कर कम्पाता हुआ पुण्यकृत मनुष्यों के साथ निवासयोग्य भू आदि सात लोकों की रचना की। स्कम्भेः 'स्तम्भुस्तुम्भु' इससे विहित श्नः को 'छन्दसि शायजपि' इससे व्यत्यय के द्वारा शायजादेश हुआ। अथवा पृथिवीनिमित्तलोको का निर्माण किया। भू आदि तीन लोक यह अर्थ है। भूमि पर अर्जित किया गया कर्मभोग के लिए अन्य लोकों का कारण है। और जो सबसे उत्कृष्टतर सभी लोकों के ऊपर है। अपुनरावृत्ति से उसकी उत्कृष्टत्व को कहते है। एक साथ के स्थान को उपासकों का सत्यलोक का निर्माण किया अथवा स्थिर करता है। क्या किया। तीन प्रकार से विशेष कर कम्पाता हुआ रोकता है। विष्णु के तीन क्रम है 'इदं विष्णुर्विचक्रमे' (ऋ० स० १.२२.१७) इत्यादि श्रुतियों में प्रसिद्ध है। इसलिए ही विष्णु के पराक्रम को अच्छी प्रकार से कहू और उससे सुख को प्राप्त करू। इस प्रकार के जिसने कार्य किये उस प्रकार के विष्णु के पराक्रम को कहता हूँ।

टिप्पणी - नु -शीघ्र। कम् यह पादपूरण अर्थ में निपात है। यद्यपि नु कम् ये भिन्न निपात है, फिर भी निघण्टू में हिकम् नुकम् सुकम् आहिकम् आकीम् नकिः माकिः नकीम् आकृतम् इन नौ का एक पद के द्वारा गणना की। निपातो का समास नही होता है। इसलिये पदपाठ में दो अलग निपात दिखाए गये।

सरलार्थः – शीघ्र ही मै विष्णु के शक्ति पूर्वक पराक्रमो का वर्णन करूँगा, जो महान गति सम्पन्न तीन पैरो के द्वारा जाकर के पार्थिव लोक आदि की रचना की। और जो (पवित्रात्मा के लिये) विशाल मेलस्थान का निर्माण किया था। इसका यह भाव है की जैसे सूर्य अपने आकर्षण से सभी भूगोलो को धारण करता है वैसे ही सूर्य आदि लोकों का कारण और जीव को जगदीश्वर धारण करते है जो इन असंख्यलोकों का निर्माण किया, जिसमे ये प्रलय को प्राप्त होते है, वह ही सबको उपासना करने योग्य है।

व्याकरण

- **अस्कभायत्** – स्कभि प्रतिबन्धे इस धातु से लङ्-लकार प्रथमपुरुष एकवचन का यह रूप है। रोकता है यह अर्थ है।
- **उत्तरम् सधस्थम्** – सहशब्द से उत्तरपद हो तो वेद में सहशब्द के स्थान में सध इसका प्रयोग होता है। उत्तरम् इसका प्रलय के बाद यह अर्थ है। पुण्यकृत लोक।
- **विचक्रमाणः** – विपूर्वक क्रमु पादविक्षेपे इस धातु से कानच्-प्रत्यय के योग से विचक्रमाण यह शब्द निष्पन्न होता है।
- **उरुगायः** – ऊर्णु आच्छादने इस धातु से उण-प्रत्यय के योग से उरुशब्द प्राप्त होता है। गा गतौ इस धातु से अण-प्रत्यय के योग से गाय शब्द प्राप्त होता है। विष्णु उरुगाय कहलाते है। बहुत स्थानों पर जिनकी गति हो यह उसका अर्थ है। कहा से यह हुआ। तीन पादों में लोकों का अतिक्रमण किया इसलिये ऐसा कहते है।

प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणे-ष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा॥२॥

पदपाठ – प्र। तत्। विष्णुः। स्तवते। वीर्येण। मृगः। न। भीमः। कुचरः। गिरिऽस्थाः॥ यस्य। उरुषु। त्रिषु। विऽक्रमणेषु। अधिऽक्षियन्ति। भुवनानि। विश्वा॥२॥

अन्वय – हे मनुष्या यस्य निर्मितेषूरुषु त्रिषु विक्रमणेषु विश्वा भुवनान्यधिक्षियन्ति तत् स विष्णुः स्ववीर्येण कुचरो गिरिष्ठा मृगो भीमो नेव विश्वाँल्लोकान् प्रस्तवते ।।२।।

व्याख्या – हे मनुष्यों जिस जगदीश्वर के निर्माण किये हुए जन्म नाम और स्थान इन तीनो का विविध प्रकार के सृष्टि के कर्मो में समस्त लोक लोकान्तर आधार रूप में निवास करते है। वह महानुभावशक्ति से अपने पराक्रमो की ऊपर कहे गए सभी के द्वारा स्तुति करते है। शक्ति से स्तुति करते है यहाँ पर उदाहरण दिया गया है। हिरनों के लिए शेर के समान। जैसे अपने विरोधियों को हिरण के समान भयभीत करता है जैसे शेर से हिरण भयभीत होते है वैसे ही डरपोक मनुष्य कुटिलगामी अर्थात ऊचे नीचे नाना प्रकार विषम स्थलों में चलने और पर्वत कन्दराओं में स्थिर होने वाले हिरण के समान भंयकर समस्त लोक लोकान्तरो को प्रशासित करता है। इस अर्थ में निरुक्त में कहा गया – 'मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः'। हिरण के समान भंयकर समस्त लोक लोकान्तरो को प्रशसित करता है। कुचर इति कुटिलकर्म देवताभिधानकुटिल कर्म करते है। गिरिस्थायी

गिरि पर्वत होते है पर्ववान् पर्वत को कहते है। उसी प्रकार हम भी हिरणों को खोजने वाला शत्रुओ के समान वह भंयकर है। परमेश्वर से भय 'भीषास्माद्वात: पवते' (तै० आ० ८.८.१) इत्यादिश्रुतियों में प्रसिद्ध है। और कुचर:कुटिलगामी शत्रुवध आदिकुत्सितकर्म को कर्ता सभी भूमियों में अथवा तीनो लोक में संचार करता है अथवा पर्वत के समान ऊचे स्थान होते है। अथवा गिरि मन्त्रादिरूप में वाणी सभी वर्तमान है। इस प्रकार यह अपनी महिमा से स्तुति करते है।और जिस विष्णु के जांघो से विस्तीर्णतीन संख्याओ में विक्रम पैर प्रक्षेप में विश्व के सभी भुवनउत्पन्न आश्रित होकर के निवास करते है वह विष्णु की स्तुति करता है।

टिप्पणी – इस मन्त्र में तीनो लोक का विस्तार किया उसके पराक्रमो का इस प्रकार यहाँ अनेक प्रकार के मत आचार्यो के है। विक्रमशब्द का पादचलाना अर्थ है। उरुशब्द का विस्तार अर्थ है। विस्तृत तीनो लोक में पादप्रक्षेप करके सभी लोकों को आश्रित करके रहता है। विश्व इस सर्वनाम का विश्वानि यह रूप है। वेद में तो विश्वा यह रूप है। विष्णु के तीन पाद जितने ही सभी लोक है। अर्थात् विष्णु ने तीन पैर के द्वारा सभी भुवन अर्थात् रचित जगत् को सम्पूर्ण रूप से अतिक्रमण करते है। यहाँ भुवन क्या है। और वे पादप्रक्षेप क्या है। यहाँ यह विष्णु क्या है। उसका क्या स्वरूप है। पूर्वमन्त्र में जो कहा गया की विष्णु ने ऊपर के लोक और अधोलोक की रचना की। शाकपूणिने किसी की व्याख्या करते हुए कहा –विष्णु ने तीन पैर के द्वारा तीनो भवनों को पार कर लिया तीन भाव के द्वारा पृथिवी अन्तरिक्ष और दिव में। और्णनाभ इति आचार्य का मत है की विष्णु यहाँ पर सूर्य है। पूर्व में ऊगता हुआ प्रथमपाद को धारण करते है। मध्याह्न में आकाश पर चढ़कर द्वितीय पाद को रखता है। और सांयकाल में घर जाने के लिये तीसरा पद को रखता है।

उसकी इस प्रकार व्याख्या भी सम्भव है – जो सृष्टिकर्ता है वह विष्णु है। वह ही तीन पाद में सृष्टि को अतिक्रमण करके रहता है। अर्थात् सृष्टिकाल में एक पाद को रखा। स्थितिकाल में द्वितीय पाद रखा। प्रलयकाल में तीसरा पाद रखा। इस प्रकार वह सृष्टि को अतिक्रमण करता है। यद्यपि एक ही ईश्वर सृष्टिकाल में ब्रह्मा, पालनकाल में विष्णु, संहार में प्रवृत्त महेश्वर इन तीन नामो से जाने जाते है। फिर भी वेद से उत्तरसाहित्य में भी विष्णु को ही सृष्टिस्थितिसंहार कर्ता अधिकाश रूप से कहा गया है।

सरलार्थ – विष्णु जिसके तीनो पाद में समस्तप्राणी निवास करता है, जो पराक्रम युक्तकार्य के लिये स्तुति की। जैसे पर्वत में निवास करने वाले और स्वेच्छा से विचरण करने वाले भयङ्कर पशु रहते है। यहाँ पर यह भाव है की यहाँ पर उपमालङ्कार है। कोई भी पदार्थ ईश्वरसृष्टिनियमक्रम का उल्लङ्घन कर सकता है, जो धार्मिकका मित्र के समान आनन्द देने वाला दुष्टो का शेर के समान भयप्रदान करने वाले न्याय आदिगुण को धारण करने वाले परमात्मा है, वह ही सभी का अधिष्ठाता न्यायाधीश है ऐसा जानना चाहिए।

व्याकरण

- **स्तवते** – स्तु प्रशंसायाम् इस धातु से कर्म में यह आत्मनेपद का। प्रथमपुरुष एकवचन का है।
- **मृगः** – मृज् गतौ इस धातु से कप्रत्यय करने पर मृगशब्द से निष्पन्न होता है।

- **भीमः** – भी भये इस धातु से मक् प्रत्यय करने पर कहा गया है।
- **अधिक्षियन्ति** – अधिपूर्वक क्षि निवासे इस धातु से लट प्रथमपुरुष बहुवचन में यह रूप है। आश्रितकरके निवास करता है यह उसका अर्थ है।
- **गिरिष्ठाः** – गिरिशब्द से स्था गतिनिवृत्तौ इस धातु से क्विपप्रत्यय करने पर गिरिष्ठाः यह रूप हुआ। वहा गिरि इस पद में भी गि यह वाणी है। उसका सप्तमी में गिरि है। स्थिर रहने पर वह गिरिष्ठाः कहलाती है। अर्थात् वाणी का वह स्वामी है। गिरिशब्द पर्वतवाची है। तब पर्वत में स्थिर रहता है वह यह अर्थ आता है। अर्थात् पर्वतजैसे उच्छ्रित तथा उन्नतलोकवासी यह अर्थ है।

प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थ-मेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः॥३॥

पदपाठ – **प्र। विष्णवे। शूषम्। एतु। मन्म। गिरिऽक्षिते। उरुऽगायाय। वृष्णे॥ यः। इदम्। दीर्घम्। प्रऽयतम्। सधऽस्थम्। एकः। विऽममे। त्रिऽभिः। इत्। पदेभिः॥३॥**

अन्वय – हे मनुष्या य एक इत् त्रिभिः पदेभिरिदं दीर्घ प्रयतं सधस्थं प्रविममे तस्मै वृष्णे गिरिक्षित उरुगायाय विष्णवे मन्म शूषमेतु ॥३॥

व्याख्या – हे मनुष्यों जो एक ही परमात्मा तीन अर्थात स्थूल सूक्ष्म जानने योग्य अंशो से इस बड़े हुए ऊतम यत्न साध्य सिद्धांतावयवो को एक साथ के स्थान को विशेषता से रचता है उस अनन्त पराक्रमी को अपने में स्थिर रखने वाले बहुत प्राणियों से वा बहुत प्रकार से प्रशसित व्यापक परमात्मा के लिए विज्ञान और मन्त्र प्राप्त हो। कर्म में संप्रदान होने से चतुर्थी। किस प्रकार की। पर्वत के समान वाणी उन्नतप्रदेश हो अथवा अनेक रूपों में उसकी स्तुति करते हुए उसकी कामना करते है। इस प्रकार के महानुभाव को हम शीघ्र प्राप्त हो। कौन इसमें विशेष है यह कहलाता है। जो यह विष्णुप्रसिद्ध दिखाई देने वाले अतिविस्तृतलोको में निवास करता हुआ एकही अद्वितीय होता हुआ तीन पैर के द्वारा विशेष रूप से इन लोक का निर्माण किया।

सरलार्थ – (मेरी) शक्तिशाली प्रार्थना, विस्तृत लोक में वास करने वाले, विशाल पैरो से युक्त, इच्छा को पूर्ण करने वाला, विष्णु के प्रति (जाये) जो आत्मा को साधना के लिये प्रशस्तमेलस्थान को तीन पैरो से उस परमात्मा ने धारण किया। इसका ही यह भाव भी अनन्तबल से युक्त जगदीश्वर के अन्तर से इस विचित्रजगत का स्रष्टा धारण करने वाला और पालन करने वाले उस परमात्मा की उपासना करनी चाहिए उसको छोड़कर अन्य किसी की उपासना नही करनी चाहिए।

व्याकरण

- **शूषम्** – शूषधातु से घञ करने पर शूष यह रूप बना। उसका द्वितीयान्त रूप शूषम् है।
- **गिरिक्षिते** – क्षि निवासे इस धातु से क्विप् प्रत्यय करने पर। तुक आगम। गिरि+क्षिते रूप बनता है।

यस्य त्री पूर्णा मधुना पदा-न्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्या-मेको दाधार भुवनानि विश्वा॥४॥

पदपाठ - **यस्य। त्री। पूर्णा। मधुना। पदानि। अक्षीयमाणा। स्वधया। मदन्ति॥ यः। ऊँम् इति। त्रिऽधातु। पृथिवीम्। उत। द्याम्। एकः। दाधार। भुवनानि। विश्वा॥४॥**

अन्वय - हे मनुष्या यस्य रचनायां मधुना पूर्णाऽक्षीयमाणा त्री पदानि स्वधया मदन्ति य एक उ पृथिवीमुत द्यां त्रिधातु विश्वा भुवनानि दाधार स एव परमात्मा सर्वैर्वेदितव्यः ॥४॥

व्याख्या - जो विष्णु मधुर आदि गुणों से युक्त दिव्य अमृत के द्वारा पूर्णतीन पैर पादप्रक्षेप विनाश रहित अपने अन्न से अपने आश्रित लोगो को प्रसन्न करने वाला। और जो एक ही अद्वैत परमात्मा पृथिवी प्रख्यात भूमिद्यौ प्रकाशित अन्तरिक्षऔर विश्वके चौदह भुवनऔर लोकों का कर्ता है। अथवा पृथिवीशब्द से नीचे के अतलवितल आदि सात भुवन को कहा गया है। द्युशब्द से उसके अंतर्गत सात भुव आदिभुवन है। इस प्रकार चौदह लोकों को विश्व भुवनसभी उसके अन्तर्गत आते है। जिसमे सत्व रजस और तं ये तीन हो। तीन धातुओ का समाहार त्रिधातु कहलाता है। पृथिवी जल अग्नि तीन रूपों जैसा विशिष्टहोता है और उसको धारण करने वाला धृतवान् कहलाता है। तुजादि होने से अभ्यास को दीर्घत्व हुआ। उत्पन्न किया अर्थ है। छन्दोगारण्यक में कहा गया है - 'तत्तेजोऽसृजत तदन्नमसृजत ता आप ऐक्षन्त' इति भूतत्रयसृष्टिमुक्त्वा 'हन्ताहमिमास्तिस्रो देवतास्तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणि' (छा० उ० ६.३.२-३) इत्यादि के द्वारा तीन कारणों से सृष्टि को उत्पन्न किया। अथवा। तीन धातु से तीन काल से अथवा तीन गुण से धारण किया हुआ है।

सरलार्थ - जिसका कभी विनाश नही होता है, जिसके मधुर से पूर्ण तीन पैर (मनुष्यों के लिये) अपनी शक्ति से आनन्द देता है, जो एक होता हुआ भी तीनधातुओ को, पृथिवी को, आकाश को तथा सम्पूर्ण लोक को धारण करता है (उस विष्णु के प्रति मेंरी शक्तिशाली स्तुति जाये)। इसका यह भावजो अनादिकारण से सूर्य आदिप्रकाश के समान शीघ्र उत्पन्न करने वाला सभी के द्वारा भोग्य पदार्थो के साथ जोड़ता है आनंद प्रदान करता है, उसके गुणकर्म उपासना से ही आनन्दकी प्राप्ति होती है।

तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः॥५॥

पदपाठ - **तत्। अस्य। प्रियम्। अभि। पाथः। अश्याम्। नरः। यत्र। देवऽयवः। मदन्ति॥ उरुऽक्रमस्य। सः। हि। बन्धुः। इत्था। विष्णोः। पदे। परमे। मध्वः। उत्सः॥५॥**

अन्वय - (अहं) यत्र देवयवो नरो मन्दति तदस्योरुक्रमस्य विष्णोः प्रियं पाथोभ्यश्यां यस्य परमे पदे मध्व उत्सइव तृप्तिकरो गुणो वर्त्तते स हि इत्था नो बन्धुरिवास्ति ॥५॥

व्याख्या - जिस प्रिय विष्णु का प्रियभूत होकर के सभी के सेवन करने योग्य प्रसिद्ध मार्ग को बनता है। उसका यह अन्तरिक्षनाम है, 'पाथोऽन्तरिक्षं पथा व्याख्यातम्' (निरु० ६.७) इति यास्क के द्वारा कहा गया है। अविनश्वर ब्रह्मलोक को कहते है। इस में व्याप्त होता है। उसको ही विशेष

रूप से कहते है। जिस स्थान पर दिव्य लोगो की कामना करने वाले देव के प्रकाशशील स्वभाव को विष्णु आत्मा को चाहने वाले यज्ञदान आदि के द्वारा प्राप्त करने की इच्छा वाले मनुष्य प्रसन्नता का अनुभव करते है। सब और से उसको प्राप्त हो यह उसका अन्वय है। फिर भी उसको विशेष रूप से कहा गया है। अनन्त पराक्रम युक्त अत्यधिकसभी जगत का कारण वह व्यापक शक्तिशाली विष्णु ही है, वह केवलसुखात्मक स्थान पर मधुर की अनुभूति करता है। उसको प्राप्त होऊ। जहा पर भूख प्यास जन्म मरण आदि की दुबारा आवृत्ति नही हो केवल संकल्पमात्र से ही अमृत आदिभोग प्राप्त हो उस प्रकार इसका अर्थ है। उससे अधिक नही है ऐसा कहा गया है। इस प्रकार वह ही सभी का भाई है सभी के लिये भाई के समान हितकारी अथवा उसके पदको प्राप्त होता है। 'न च पुनरावर्तते' इति श्रुति से उसको मित्र के समान माना गया है। हिशब्द सभी श्रुतिस्मृतिपुराण आदि में प्रसिद्धद्योतन अर्थ में है।

सरलार्थ – विष्णु के उस लोक को प्राप्त करना चाहता हूँ जहा देवताओ की इच्छा से मनुष्य आनन्द करते है। महान गतिशील विष्णु का एकमधुसरोवर है। इस प्रकार निश्चय से ही वह सभी के मित्र के समान ही है। यह इसका भावहै यहाँ उपमावाचक और लुप्तोपमालङ्कार। जो परमेश्वर से वेदद्वारा दी हुई आज्ञा के अनुसार जाता है, वे मोक्षसुख को प्राप्त होते है। जैसे मनुष्य भाई से सहायता को प्राप्त करते है उसी प्रकार प्यासे मधुरजल कुए को प्राप्त करके तृप्त होते है, तथा परमेश्वर को प्राप्त करके पूर्ण आनन्द को प्राप्त करते है।

व्याकरण

- देवयवः – देव+यु क्विप्
- इत्था – इत्थम् इस अर्थ में आत्व

ता वां वास्तू॑न्युश्मसि गम॑ध्यै यत्र गावो भूरि॑शृङ्गा अयास॑ः।
अत्राह तदु॑रुगायस्य वृष्णः॑ परमं पदमव॑ भाति भूरि॑॥६॥

पदपाठ – ता। वाम्। वास्तू॑नि। उश्मसि। गम॑ध्यै। यत्र॑। गाव॑ः। भूरि॑ऽशृङ्गाः। अयास॑ः। अत्र॑। अह॑। तत्। उरुऽगायस्य॑। वृष्णः॑। परमम्। पदम्। अव॑। भाति। भूरि॑॥६॥

अन्वय – (हे आप्तौ विद्वांसौ) यत्रायासो भूरिशृङ्गा गावः सन्ति ता तानि वास्तूनि वां युवयोर्गमध्यै वयमुश्मसि। यदुरुगायस्य वृष्णः परमेश्वरस्य परमं पदं भूर्यवभाति तदत्राह वयमुश्मसि ।।६।।

व्याख्या – हे शास्त्रवेता विद्वानों अथवा यजमान तुम्हारे लिये प्राप्त करने योग्य प्रसिद्ध वस्तुओ को सुखनिवास के योग्य स्थानजाने को हम लोग चाहते है। उसके लिये विष्णु से प्रार्थना करते है यह अर्थ है। उन किनको यहाँ पर कहते हो। जहा वस्तुओ में बहुत उत्तम सींगो के समान किरने के द्वारा उन वस्तुओ को हम जान सकते है अथवा वे किरणों द्वारा अत्यधिक विस्तृत होती है। अथवा। उन गए हुए को प्राप्त हो। इस प्रकार अत्यन्तप्रकाश से युक्त यह अर्थ है। यहाँ कहा गया है की वस्तु के आधारभूत द्युलोक में अनन्त विस्तृत सूर्य की किरने सुख की वर्षा करने वाले सभी पुराण आदि में समझने योग्य प्रसिद्ध परमात्मा के विशेष स्थान को अत्यन्त उत्कृष्टता को

अपनी महिमा से प्रकट करता है। इस मन्त्र में यास्क ने गोशब्द को किरणवाचक रूप में व्याख्या की है - उन वस्तुओ की कामना करता हूँ जहा जाने के लिये गायों के तीक्ष्ण सींग के समान जो तेज किरने है उनका प्रकाश वहा तक विस्तृत हो "शृङ्गं श्रयतेर्वा शृणातेर्वा शम्नातेर्वा शरणयोद्गतमिति वा शिरसो निर्गतमिति वायासोऽयना"। वहा अनन्त विष्णु की महिमा का उत्कृष्ट रूप से उसका वर्णन किया।

सरलार्थ - इस मन्त्र में ऋत्विग पत्नीयजमान के प्रति कहता है की हे पत्नीयजमानो तुम उस स्थान के प्रतिजाओ जहाँ तेज किरने हमेशा गतिशील रहती है। जहाँ महान गतिशील की, इच्छापूर्ति करने वाले विष्णु के परम धाम अधोलोक को प्रकाशित करता है। यह इसका भाव है की यहाँ वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जहाँ विद्वांन मुक्ति को प्राप्त करते है, वहा कुछ भी अन्धकार नही है, और मोक्ष प्राप्त किरने प्रकाशित होती है उस विद्वान को ही मुक्तिपद ब्रह्म सभी और से प्रकाशित करते है।

व्याकरण

- **उश्मसि** - वश् कान्तौ इस धातु से लट् प्रथमपुरुष बहुवचन। वकार को उकार अर्थात् सम्प्रसारण छन्द में।
- **अयासः** - इण् धातु से अच जस असुक् इनके योग में अयास यह शब्दः निष्पन्न होता है। प्राप्त हुआ यह उसका अर्थ है।
- **वाम्** - युष्मद अर्थ में बहुत्व को द्विवचनस्थान में।
- **गमध्यै** - गम् धातु से तुमुन स्थान में शध्यै प्रत्यय करने पर। यह उसका रूप है।

पाठगत प्रश्न 20.1

1. विष्णुसूक्त का ऋषि छन्द और देवता कौन है?
2. नु इस अर्थ में किन दो पद का प्रयोग किया गया है?
3. विष्णु शब्द का क्या अर्थ है?
4. वीर्याणि इसका क्या अर्थ है?
5. विममे इसका क्या अर्थ है?
6. रजः शब्द किस प्रकार का है?
7. विष्णु के कितने कार्य है?

8. कुचरः इसका क्या अर्थ है?

9. शूषम् इसका क्या अर्थ है?

10. यस्य त्री पूर्णा... इत्यादिमन्त्र में पृथिवी शब्द का क्या अर्थ है?

11. दाधार इसका क्या अर्थ है?

12. त्रिधातु इसका विग्रह वाक्य लिखो।

13. पाथः इसका क्या अर्थ है?

14. स हि बन्धुरित्था ... इत्यादि मन्त्र अंश में हि शब्द का क्या अर्थ है?

15. उश्मसि इसका क्या अर्थ है?

20.2 विष्णु का स्वरुप

विष्णु एक द्युस्थानीय देव है। ऋग्वेद में उसकी स्तुति के लिए पांच सूक्तप्राप्त होते है। यद्यपि सूक्तो को संख्या कम है, तथापि महानता की दृष्टि से ये शीर्षस्थान पर है।

विष्णुशब्द विष्-धातु से निष्पन्न होता है जिसका अर्थहोता है व्यापकशील। अर्थात् तीनो लोक में ही जिसकी कीर्तिप्रसिद्ध होती है वह विष्णु कहलाता है। विष्णुशब्द का अन्य अर्थ होता है क्रियाशील है। यह विष्णुसभी के अपेक्षा से अधिकक्रियाशील है। शरीर के अधिष्ठाता देव विष्णु है। पक्षियों के मध्य में इसका वाहनगरुड है। भीम-वृष्ण-गिरिजा-गिरिक्षत-सहीयान्-इत्यादिनाम से भी इस विष्णु का व्यवहार किया जाता है। विष्णु युवक तथा विशालकाय है ऐसा ऋग्वेद में वर्णन किया गया है। वामन अवतार में उसके त्रिविक्रमरूप से परिचित है। उसका महत्त्वपूर्ण कार्य है, पाद की तीन बार से विस्तार किया है।

त्रीणि भान्ति रजांस्तस्य यत्पदानि तु तेजसा।
येन मेधातिथिः प्राह विष्णुमेनं त्रिविक्रममं॥२.६४॥

ऋग्वेद में बहुत बार ही विक्रम-उरुक्रम-उरुगाय-इत्यादिशब्द से उसके तीन पैर का वर्णन किया है। तीन पाद के विस्तार से भी सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है। उसके दो विस्तार लौकिकमनुष्यों के लिये ज्ञान का विषय है, परन्तु तीसरी बार जो विस्तार किया है, बह साधारण रूप से नही जाना जा सकता है। अत ज्ञान के लिये तीसरे पद को देखने के लिए आकाश में ही दृष्टि को स्थापित करती है।

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिदीव चक्षुराततम्॥ ऋग्वेद-१.२२.२०॥

जहा सज्जन निवास करता है, और पुन जहा मधुसरोवर वहा पर ही विष्णुनिवास करते है। विष्णु जहाँ निवास करते है, वहा देव हमेशा विचरण करते है। विष्णु के तीन पाद के विषय में प्राचीनकाल

से ही वर्णन प्राप्त होते है। विष्णु के प्रथम पाद से पृथ्वीलोक का सङ्क्रमणऔर द्वितीय पद से अन्तरिक्षलोक का तथा तृतीय पद से द्युलोकस्थसूर्यमण्डल को प्राप्त कर लेते है इत्यादिमतप्राप्त होते है। वस्तुत तो विष्णुसूर्य का एक प्रतिरूप है। अथर्ववेद में भी विष्णु से ही ऊष्णता प्रदातृत्व के रूप में विख्यात है। **(अथर्ववेद-५.२६.७)**।

विष्णु के सम्बन्ध मुख्यरूप से इन्द्र के साथ भी है। यह इन्द्र के मित्र है। पुराण में यह विष्णु उपेन्द्ररूप से भी (इन्द्र के छोटे भाई के रूप) में वर्णन किया गया है। वृत्रासुर के वधकाल में विष्णु ने इन्द्र की सहायता की। सुना जाता है की वृत्रासुरवध काल में इन्द्र ने पादविस्तार के लिये विष्णु को कहते है।

अथाब्रवीद् वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन्त्सखे विष्णो वितरं विक्रमस्व॥ ऋग्वेद-४.१८.११॥

शतपथब्राह्मण के अनुसार वृत्रवध काल में विष्णु ने इन्द्र के साथ युद्धस्थल में ही थे। इन्द्र के साथ मित्रता के होने से मरुद्गण भी इसके मित्र थे।

विष्णु के चरित्र का एक विशेषहै की वह गर्भ के रक्षक है। गर्भाधाननिमित्त के लिये अन्य देवो के साथ विष्णु की भी स्तुति प्रसिद्ध है। इनको छोड़कर विष्णुहमेशा परोपकारी शरणागतरक्षक भक्तवत्सल दयालुऔर उदार है। वह ही विश्व को धारण और पालन करता है। गिरिक्षित-इत्यादि उपाधि से युक्त विष्णु सूर्य के प्रतिनिधि होने के रूप में वर्णन किया गया है। ऋग्वेद में अनेक स्थान पर इन्द्रमित्रवरुण आदिदेवो के समान ही विष्णु को अभिहित किया गया है।

इन्द्रं मित्रे वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥ (ऋग्वेद- १.१६४.४६)

20.3 विष्णुसूक्त का सार

विष्णु वैदिकदेवो में अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह ही सभी चर अचरजीवो का आधार है। यह ब्राह्मणप्रिय है, इसलिये कहते है की ब्राह्मनो में पदाघात के लक्षण विद्यमान है। इसके ही उदर से कमल की उत्पत्ति हुई जहा पर बैठकर के ब्रह्मा ने ब्रह्माण्ड की रचना की। इसके पैर से ही गङ्गा की सृष्टि हुई यह प्रसिद्ध ही है। और यह विश्व के पालनकर्ता भी कहलाता है। इस प्रकार वैदिकदेवो में भी अत्यधिकमहानता को धारण किये हुए यह विष्णु प्रसीद्ध ही है।

इस सूक्त के आदि श्रुतिमें विष्णु के प्रति कहा गया है की जो शीघ्र ही महान गति से युक्तविष्णु के पराक्रम पूर्ण कार्य का वर्णन करता हूँ, वह कैसे तीन पैर के द्वारा सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त किया, सज्जनो के लिए उच्चस्थान का निर्माण किया इत्यादि कहा है। पर्वत में स्थित स्वेच्छा से गमन करने वाले भयानकपशु जैसे स्वतन्त्र है वैसे ही यह भी स्वतन्त्रइसके तीन पादभूमि के मध्य में सभी प्राणि जीवन बिताते है, इसलिये यह स्तुति करते है। पुण्यात्मा के मिलनस्थान का तीन पाद से व्यापक उच्चस्थाननिवासी यह विष्णुहमारी रक्षा करे हमारी शरण को प्राप्त हो, और हमारी इच्छाको पूर्ण करो। हमारी स्तुति पृथिवीजलतेज स्वरूप शाश्वत आनन्ददायकआकाश का तथा विश्व के धाता विष्णु को प्राप्त हो। विष्णु का प्रिय लोक मेरा भी हो जहा मनुष्यबिना किसी बाधा के

आनन्द को प्राप्त करते है। विष्णु लोक में मनुष्यों की प्रसन्नता के लिये एक मधुसरोवर है, अत निश्चय से वह सभी का मित्र ही होता है। ऋत्विग पत्नी-यजमानके प्रति कहते है की वे दोनों भी विष्णुलोक को प्राप्त हो, जहा विस्तृत प्रकाश से सभी जगह ज्योतिफैली हुई है, तथा सभी मनोरथो का परिपूरक विष्णुअपने भाव से प्रकाशित करते है।

विष्णसूक्त अंश में पाठसार

इस पाठ में विष्णुसूक्त के छ मन्त्र है। इस विष्णुसूक्त में ऋषि कहते है की सभी जगह व्यापकशील विष्णु के पराक्रमो को शीघ्र कहते है। जो पृथिवी सम्बद्ध अग्नि, वायु आदि का निर्माण किया। और जिसने अतिविस्तृत अन्तरिक्ष का आधाररूप से निर्माण किया। भूमि विविध रूप से क्रम पूर्वक वह महद् आदि के द्वारा अनेक गीत गाती है। उस प्रकार के विष्णु के पराक्रम को कहता हूँ। पराक्रम कार्यो की स्तुति करता हुआ सिंह आदि के समान भयानक, शत्रुवधकर्त्ता, उन्नत वाचक के रूप मन्त्रों में स्थित है, जिस विष्णु के पादप्रक्षेप के द्वारा यह सभी भुवन को आश्रित किया हुआ है, उस विष्णु की प्रकर्षरूप से स्तुति करते है। उन्नतप्रदेश में रहता हुआ अनेक प्रकार से किये गये कार्यो के चारो और सर्वव्यापक विष्णु के लिये हमारे कर्मजन्यफल अथवा हमारे स्तोत्रजन्यबल हो। जो विष्णु ने इस अतिविस्तृततीन लोक को अद्वितीय होता हुआ तीन पैरो के द्वारा विशेष रूप से निर्मित किया। विष्णु के मधुर से पूर्णतीन पादप्रक्षेप से अक्षयरूप से आश्रित मनुष्यों का अन्न के द्वारा रक्षित है। पृथिवी, द्युलोक और सभी भुवन पृथिवी जल तेजरूप से तिन धातुओ को धारण किया हुआ है। विष्णु के सभी प्रियतमो को उसके प्रसिद्ध अविनाशी ब्रह्मलोक को व्याप्त करके और जिसमे ब्रह्मलोक विष्णु को आत्मा से चाहने वाले मनुष्य विशाल तृप्ति का अनुभव करते है। अत्यन्तकर्मो के कर्ता विष्णु के उत्कृष्ट स्थान में मधुर सरोवर है। इस प्रकार से वह विष्णुसभी के भाई के रूप में रहते है। अन्तिम मन्त्र में दम्पति के प्रति कहा गया है की हे दम्पती (यागकर्म को करने वाले यजमान) तुम्हारे प्रसिद्ध सुख के योग्य स्थान की हम कामना करते है, उसके लिये विष्णु की प्रार्थना करते है। जिन स्थानो में किरने अत्यन्त उन्नतस्थान से जाने वाली हो, इस स्थानमें वस्तुओ के आधारभूत द्युलोक में अनेक प्रकार की स्तुति करने वाले कार्यो का सुख की वर्षा करने वाले विष्णु के समान उत्कृष्ट स्थान को अपनी महिमा से प्रकट करे।

मित्रावरुणसूक्त

इस प्रस्तुत पाठ के उत्तरार्ध में मित्रावरुणसूक्त को प्रस्तुत करते है। वेदों में कहे हुए प्रसिद्ध सूक्तों में यह प्रसिद्ध मित्रावरुणसूक्त है। वैदिक साहित्य में मित्रावरुण भाई के समान स्नेह के प्रतीक हैं। वैदिक व्याकरण के अनुसार से अर्थात् निरुक्त के अनुसार से मित्रावरुण वायु कहलाते है। मित्र प्राणरक्षक रूप से प्रतिपादित है। और वरुण जलधारक रूप से अथवा वर्षा करने वाले के रूप से प्रतिपादित किया है। ऋग्वेद के ऐतरेयब्राह्मणग्रन्थ के अनुसार से मित्र रात्रि रूप से और

वरुण दिन रूप से प्रतिपादित किया है। इस मित्रावरुण सूक्त के आत्रेय श्रुतिविद ऋषि, मित्रावरुण देव, त्रिष्टुप् छन्द है।

20.4 मूलपाठ मित्रावरुणसूक्त

ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वां सूर्यस्य यत्र विमुचन्त्यश्वान्।
दश शता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्यम्॥१॥

तत्सु वां मित्रावरुणा महित्वमीर्मा तस्थुषीरहभिर्दुदुह्रे।
विश्वाः पिन्वथः स्वसरस्य धेना अनु वामेकः पविरा ववर्त॥२॥

अधारयतं पृथिवीमुत द्यां मित्रराजाना वरुणा महोभिः।
वर्धयतमोषधीः पिन्वतं गा अव वृष्टिं सृजतं जीरदानू॥३॥

आ वामश्वासः सुयुजो वहन्तु यतरश्मय उप यन्त्वर्वाक्।
घृतस्य निर्णिगनु वर्तते वामुप सिन्धवः प्रदिवि क्षरन्ति॥४॥

अनु श्रुताममतिं वर्धदुर्वी बर्हिरिव यजुषा रक्षमाणा।
नमस्वन्ता धृतदक्षाधि गर्ते मित्रासाथे वरुणेळास्वन्तः॥५॥

अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यं त्रासाथे वरुणेळास्वन्तः।
राजाना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्रस्थूणं बिभृथः सह द्वौ॥६॥

हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा वि भ्राजते दिव्य१ श्वाजनीव।
भद्रे क्षेत्रे निमिता तिल्विले वा सनेम मध्वो अधिगर्त्यस्य॥७॥

हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयः स्थूणमुदिता सूर्यस्य।
आ रोहथो वरुण मित्र गर्तमतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च॥८॥

यद्बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू अच्छिद्रं शर्म भुवनस्य गोपा।
तेन नो मित्रावरुणावविष्टं सिषासन्तो जिगीवांसः स्याम॥९॥

20.4.1 मूलपाठ की व्याख्या (मित्रावरुणसूक्त)

ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वां सूर्यस्य यत्र विमुचन्त्यश्वान्।
दश शता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्यम्॥१॥

पदपाठ - ऋतेन। ऋतम्। अपिऽहितम्। ध्रुवम्। वाम्। सूर्यस्य। यत्र। विऽमुचन्ति। अश्वान्॥ दश। शता। सह। तस्थुः। तत्। एकम्। देवानाम्। श्रेष्ठम्। वपुषाम्। अपश्यम्॥१॥

टिप्पणियाँ

अन्वय – ऋतेन अपिहितम् ऋतं ध्रुवं वा सूर्यस्य यत्र वाम् अश्वान् विमुचन्ति। दश शता सह तस्थुः तत् एकं देवानां वपुषां श्रेष्ठम् अपश्यम्।

व्याख्या – ऋत से षष्ठ सूक्त को आत्रेयश्रुतविद आर्ष त्रैष्टुभ मैत्रावरुण है। और जैसा कहा गया है – 'ऋतेन नव श्रुतविन्मैत्रावरुणं वै तत्' इति। वै-तत इन दोनों के प्रयोग होने से तुह्यादिपरिभाषा के द्वारा ग्यारह सूक्तो में मित्रावरुणदेव की स्तुति की गई है। विनियोग लैङ्गिक है।

सूर्य का ऋत सत्यभूत मण्डल को ऋतजल से निश्चित रूप से ढके हुए अटल स्थिर शाश्वत को देखा। जहाँ पर तुम दोनों निवास करते हो यह अर्थ है। सूर्यमण्डल में मित्रावरुण की स्थिति 'चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः', 'उद्वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं देवयोः', 'चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य' इत्यादियों में प्रसिद्ध है। जहाँ जिस मण्डल में स्थितघोड़ो को स्तोता मुक्त करता है। मन शरीर आदि द्वारा निरुद्ध किया यह अर्थ है। अथवा शीघ्र दौड़ने के लिये प्रेरित करते है। जिस मण्डल में दश, सौ, और हजार किरने रहती है, उस प्रकार के दिव्य लोक में देवो का निवास स्थान है, तेज अग्नि आदि के समान श्रेष्ठ कर्म करते है। मत्वर्थलक्षणा है। अथवा व्यधिकरणषष्ठी है। देवो का स्थान और शरीर श्रेष्ठ है। मण्डल को ही सूर्य का निवास स्थान कहते है। उस मण्डल को देखा। अथवा हम तुम दोनों के मध्य में सूर्य के मण्डल को देखते है ऐसी व्याख्या की 'मैत्रं वा अहः' इस श्रुत्ति से मित्र ही सूर्य आदित्य है ऐसा आशय है।

सरलार्थ – जल से ढका हुआ शाश्वत सूर्य के मण्डल को मै देखता हूँ। जहाँ तुम दोनों की स्थिति है वहां के घोड़ो को स्तोता मुक्त करता है। और वहा एक हजार किरने रहती है। और तेजस्वी देवो में से एकदेव की श्रेष्ठमूर्ति को मै देखता हूँ।

व्याकरण

- **ऋतेन** – ऋतशब्द का तृतीया एकवचन में ऋतेन यह रूप है।
- **अपिहितम्** – अपिपूर्वकधा-धातु से क्तप्रत्यय करने पर विकल्प से पिहितम् यह रूप बनता है। 'वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः' इस न्याय से अपीति उपसर्ग के अकार का लोप विकल्प से होता है। उससे पिहितम् और अपिहितं ये दो रूप बनते है।
- **विमुचन्ति** – विपूर्वकमुच्-धातु से लट्-लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में विमुचन्ति यह रूप है।
- **तस्थुः** – स्था-धातु से लिट्-लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में तस्थुः यह रूप है।
- **वपुषाम्** – वपुष्-शब्द का षष्ठीबहुवचन में वपुषाम् यह रूप है।
- **अपश्यम्** – दृश्-धातु से लङ्-लकार उत्तमपुरुष एकवचन में अपश्यम् यह रूप बनता है।

तत्सु वां मित्रावरुणा महित्वमीर्मा तस्थुषीरहंभिर्दुदुह्रे।
विश्वाः पिन्वथः स्वसरस्य धेना अनु वामेकः पविरा ववर्त॥२॥

पदपाठ – तत्। सु। वाम्। मित्रावरुणा। महित्वम्। ईर्मा। तस्थुषीः। अहंऽभिः। दुदुह्रे॥ विश्वाः। पिन्वथः। स्वसरस्य। धेनाः। अनु। वाम्एकः। पविः। आ। ववर्त॥२॥

अन्वय – मित्रावरुणा वां तत् महित्वं सु ईर्मा अहोऽभिः तस्थुषीः दुदुह्रे स्वसरस्य विश्वाः धेनाः पिन्वथः अनु वाम् एकः पविः आववर्त।

व्याख्या – हे मित्रावरुणहम तुम्हारे उस महिमा को या उस महत्व को अच्छी प्रकार से कहते है। और क्या कहते हो। इस सम्पूर्ण चर अचर जगत का प्रेरक सूर्य दिन बर्षा ऋतू के स्थावर जलो का दोहन करता है। और तुम गतिशील सूर्य की सभी किरणों को चमकीला बनाते हो। अथवा तुम दोनों एकसंसार का आधार हो। पवि रथ की नेमि को कहते है श्पवी रथनेमिर्भवतिश ऐसा यास्क का वचन, यहाँ पर लक्षितलक्षणणा के द्वारा रथ में हो, केवलचक्र के घुमने के योग से। तुम्हारा अकेला रथ धीरे धीरे चले।

सरलार्थ – हे मित्रावरुणतुम्हारा महत्व इसलिये प्रसिद्ध है कि उसके द्वारा सदा घुमने वाले सूर्य ने वर्षा ऋतु को स्थावर जलो को दुहा है। तुम सूर्य की सभी किरणों को चमकीला बनाते हो। तुम्हारा अकेला रथक्रम पूर्वक धीरे धीरे चले।

व्याकरण

- **मित्रावरुणा** – मित्रश्च वरुणश्चेति मित्रावरुणौ इति द्वन्द्वसमास।
- **तस्थुषीः** – स्था-धातु क्वसुन्प्रत्यय करने पर स्त्रियाम् ङीप्प्रत्यय करने पर द्वितीयाबहुवचन में तस्थुषीः यह रूप है।
- **अहभिः** – अहन्-शब्द का तृतीयाबहुवचन में अहभिः रूप है।
- **दुदुह्रे** – दुह्-धातु से लिट्-लकार आत्मनेपद प्रथमपुरुषबहुवचन में दुदुह्रे यह रूप है।
- **धेनाः** – धे-धातु से शब्द से इसकी उत्पति हुई। धेनाशब्द का द्वितीयाबहुवचन में धेनाः यह रूप है।
- **पविः** – पू-धातु से 'अच इः' इस औणादिकसूत्र से इप्रत्यय करने पर पविः यह रूप बना।
- **आववर्त** – आपूर्वकवृत्-धातु से लिट्-लकार प्रथमाबहुवचन में आववर्त यह रूप बना।

अधा॑रयतं पृथि॒वीमु॒त द्यां मि॒त्र॑राजाना वरु॒णा॒ महो॑भिः।
व॒र्धय॑त॒मोष॑धीः॒ पिन्व॑तं॒ गा अव॑ वृ॒ष्टिं सृ॑जतं जीरदानू॥३॥

पदपाठ – अधा॑रयतम्। पृ॒थि॒वीम्। उ॒त। द्याम्। मित्र॒ऽराजाना। व॒रु॒णा॒। मह॑ःऽभिः॥ व॒र्धय॑तम्। ओष॑धीः। पिन्व॑तम्। गाः। अव॑। वृ॒ष्टिम्। सृ॒जत॒म्। जी॒र॒दा॒नू॒ इति॑ जीरदानू॥३॥

अन्वय – मित्रराजाना वरुणा महोभिः पृथिवीम् उत द्याम् अधारयतम्। ओषधीः वर्धयतं, गाः पिन्वतं जीरदानू वृष्टिम् अवसृजतम्।

व्याख्या – हे मित्रराजन स्तोताओं को राजा स्वामी बनाने वाले मित्रवरुण आप ही है जिनकी उपासना करते है वे आप मित्रराजन। हे वरुण। प्रतियोगी की अपेक्षा से द्विवचन है। यहाँ पाद आदि के होने

से पद का हनन नही किया गया। हे देव, तुम अपने तेजअपने सामर्थ्य के द्वारा पृथिवी और द्यौ को धारण किया हुआ है। हे देवो, तुम ओषधियों का विस्तार करो। गायों की संख्या बढाओ। उसके लिए वर्षा की रचना करके शीघ्र जीवन प्रदान करो।

सरलार्थ – हे दोनों स्वामी, मित्र और वरुण तुम दोनों तेज से पृथिवी और द्युलोक को धारण किये हुए हो। तुम औषधी समूह को बढाओ, गाय आदि पशुओ को बढाओ। और शीघ्र जीवन प्रदान करने वाले तुम वर्षा करो।

व्याकरण

- **अधारयतम्** – धृ-धातु से णिच लङ्-लकार में मध्यमपुरुषद्विवचन में अधारयतम् यह रूप है।
- **महोभिः** – महस्-शब्द का तृतीयाबहुवचन में महोभिः रूप है।
- **वर्धयतम्** – वृध्-धातु से णिच लोट्-लकार मध्यमपुरुष द्विवचन में वर्धयतम् रूप है।
- **पिन्वतम्** – पिव्-धातु से लोट्-लकार मध्यमपुरुषद्विवचन में पिन्वतम् रूप है।
- **जीरदानू** – जीरं दानू ययोस्तौ इति बहुव्रीहिसमास में जीरदानू रूप बना।

आ वामश्वा॑सः सुयुजो॑ वहन्तु यतर॑श्मय उप॑ यन्त्ववा॑क्।
घृतस्य॑ निर्णिगनु॑ वर्तते वामुप सिन्ध॑वः प्रदिवि॑ क्षरन्ति॥४॥

पदपाठ – **आ। वाम्। अश्वा॑सः। सुऽयुजः॑। वहन्तु। यतऽर॑श्मयः। उप॑। यन्तु। अर्वाक्॥ घृतस्य॑। निःऽनिक्। अनु॑। वर्तते। वाम्।उप॑। सिन्ध॑वः। प्रऽदिवि॑।क्षरन्ति॥४॥**

अन्वय – सुयुजः अश्वासः वाम् आवहन्तु यतरश्मयः अर्वाक् उपयन्तु घृतस्य निर्णिक वाम् अनुवर्तते। प्रदिवि सिन्धवः उपक्षरन्ति।

व्याख्या – हे मित्र और वरुण रथ में ठीक प्रकार से जुड़े हुए तुम्हारे घोड़े तुम दोनों को ढोवे। और सारथि द्वारा लगाम खीचने पर शीघ्र रुके। घी और जल तुम दोनों का अनुसरण करते है। और बहते है। यह प्राचीन नदिया। प्राचीन सिन्धू आदि आप की कृपा से ही प्रवाहित होती है।

सरलार्थ – सज्जित घोड़े आप को लेकर चलते है। वे संयम किरने यहाँ रुके। जल की धारा के समान वे तुम्हारा अनुसरण करती है। प्राचीनकाल से ही नदिया बहती है।

व्याकरण

- **वहन्तु** – वह्-धातु से लोट्-लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में वहन्तु रूप है।
- **यतरश्मयः** – यताः रश्यय: येषां ते यतरश्मयः यहाँ बहुव्रीहिसमास है।

- **निर्णिक्** – निर् पूर्वकनिज्-धातु से क्विप्प्रत्यय करने पर निर्णिज्-शब्दनिष्पन्न हुआ। उसका प्रथमा एकवचन में निर्णिक् रूप बना।
- **प्रदिवि** – प्रपूर्वकदिव्-धातु से क्विप्प्रत्यय करने पर प्रदिव्-शब्द निष्पन्न हुआ। उसका सप्तमी एकवचन में प्रदिवि रूप बना।
- **क्षरन्ति** – क्षर्-धातु से लट्-लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में क्षरन्ति रूप है।

पाठगत प्रश्न 20.2

1. मित्रावरुणसूक्त के ऋषि कौन, देवता कौन, छन्द क्या है?
2. ऋतम् इसका क्या अर्थ है?
3. अपिहितम् इसका क्या अर्थ है?
4. ऋतेन यहाँ पर ऋत् शब्द का क्या अर्थ है?
5. तस्थुः यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
6. ईर्मा इसका क्या अर्थ है?
7. तस्थुषीः यहाँ पर प्रत्यय क्या है?
8. पविः यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
9. धेनाः यह शब्द किस धातु से निष्पन्न हुआ?
10. जीरदानू इसका विग्रह और समास लिखो।
11. जीरदानू इस शब्द का क्या अर्थ है?
12. पिन्वतम् यह किस धातु से निष्पन्न हुआ?
13. अश्वासः इसका लौकिक रूप क्या है?
14. अधारयतम् यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?

अनु श्रुताममतिं वर्धदुर्वीं बर्हिरिव यजुषा रक्षमाणा।
नमस्वन्ता धृतदक्षाधि गर्ते मित्रासाथे वरुणेळास्वन्तः॥५॥

पदपाठ – **अनु। श्रुताम्। अमतिम्। वर्धत्। उर्वीम्। बर्हिःऽइव। यजुषा। रक्षमाणा॥ नमस्वन्ता। धृतऽदक्षा। अधि। गर्ते। मित्र। आसाथे इति। वरुण। इळासु। अन्तरिति॥५॥**

अन्वय – श्रुताम् अमतिम् अनुवर्धत्। बर्हिः यजुषा उर्वी रक्षमाणा नमस्वन्ता धृतदक्षा मित्र वरुण इळासु अन्तः गर्ते अधि आसाथे।

टिप्पणियाँ

व्याख्या – हे शरीर के तेज को बढाने वाले। रूप को बढाने वाले। शरीर को सुंदर बनाने वाले यह अर्थ है। उनको अन्नादि के द्वारा बढाने वाले। बर्हि यज्ञ को कहते है। वह जैसे ऋत्विग मंत्रों के द्वारा यज्ञ की रक्षा करते है उसी प्रकार तुम यज्ञ के द्वारा धरती की रक्षा करो, हे पालक, हे प्रकाशमान, हे अन्न के धाता अत्यधिक बलशाली हे मित्र हे वरुण हे मित्रावरुणौ तुम ऊपर कहे लक्षण वाले होने से पूजा में यागभूमि पर अन्त मध्य में रथ पर बैठते हो। ''रथोऽपि गर्त उच्यते'' (नि० ३।५) इति यास्क ने कहा। ''आ रोहथो वरुण मित्र गर्तम्'' (ऋ० सं० ५।६२।८) इति।

सरलार्थ – हे मित्रवरुणतुम विशेषशरीर के दीप्ति को बढाने वाले हो। जैसे यज्ञीयकुशापर बैठा यज्ञ में यजु मन्त्र के द्वारा रक्षित होते है, वैसे ही पृथिवी के रक्षकतुम अन्न से बलबान होकर के यज्ञभूमि पर मध्यस्थल में स्थित रथ पर बैठते है।

व्याकरण

- **वर्धत्** – वृध्-धातु से शतृप्रत्यय करने पर नपुंसकलिङ्गप्रथमा एकवचन में वर्धत् रूप बना।
- **उर्वीम्** – उरुशब्द से स्त्रीप्रत्यय करने पर उर्वीशब्द निष्पन्न हुआ। उसका द्वितीया एकवचन में उर्वीम् रूप बना।
- **यजुषा** – यजुष्-शब्द का तृतीया एकवचन में यजुषा रूप बना।
- **धृतदक्षा** – धृतः दक्षः ययोस्तौ धृतदक्षौ इति बहुव्रीहिसमास। सम्बुद्धि प्रथमा के द्विवचनका आकार है।
- **आसाथे** – आस्-धातु से आत्मनेपद में लट्-लकार में मध्यमपुरुषद्विवचन में आसाथे रूप बना।

अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यं त्रासाथे वरुणेळास्वन्तः।
राजाना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्रस्थूणं बिभृथः सह द्वौ॥६॥

पदपाठ – अक्रविऽहस्ता। सुऽकृते। परःऽपा। यम्। त्रासाथे इति। वरुणा। इळासु। अन्तरिति॥ राजाना। क्षत्रम्। अहृणीयमाना। सहस्रऽस्थूणम्। बिभृथः। सह द्वौ॥६॥

अन्वय – वरुणा! युवां यम् इळासु अन्तः त्रासाथे सुकृते अक्रविहस्ता परस्पा। राजाना अहृणीयमाना द्वौ सह क्षत्रम् सहस्रस्थूणं विभृथः।

व्याख्या – हे उदार हाथो वाले दानशूर वीर यह अर्थ है। किसके लिये। सुंदर स्तुति करने वाले के लिए। पाप से रक्षा करने वाले हे वरुण मित्रावरुणतुम उस यजमान की यज्ञभूमि में याग के मध्य और अन्तमें रक्षा करते हुए उसके लिए दानवीर बनकर उसकी पाप से रक्षा करो। और तुम दोनों राजा के समान बुलाने पर क्रोध रहित होकर सम्पत्ति एवं हजार खम्भों वाले भवन को धारण करते हो। यजमान की रक्षा के लिए। अथवा क्षत्र बल को अपरिमित खम्भे वाले यज्ञ भवन को और जाने के लिए रथ को साथ में धारण करते है।

सरलार्थ – हे मित्रावरुण यज्ञभूमि में उस यजमान की मध्यभाग में रक्षा करते हो, उस स्तुति करने वाले यजमान के प्रति उदार हाथ से उसके पालनकारी हो। हे दोनों राजन, तुम क्रोध से रहित होकर के एक हजार खम्भे वाले यज्ञशाला को धारण करते हो।

व्याकरण

- **अक्रविहस्ता** – न क्रविः अक्रविः, अक्रवी हस्तौ ययोस्तौ अक्रविहस्तौ इति बहुव्रीहि, सुप डा आदेश।
- **सुकृते** – शोभनं करोति इस विग्रह में सुपूर्वककृ-धातु से क्विप्प्रत्यय करने पर सुकृत् यह शब्द निष्पन्न हुआ। उसका चतुर्थी एकवचन में सुकृते रूप बना।
- **अहृणीयमाना** – हृणीङ्-धातु से शानच्प्रत्यय करने पर हृणीयमाना रूप बना। न हृणीयमाना अहृणीयमाना इति नञ्समास।
- **सहस्रस्थूणम्** – सहस्रं स्थूणाः यस्य तं सहस्रस्थूणम् इति बहुव्रीहिसमास।
- **विभृथः** – भृ-धातु से परस्मैपद लट्-लकार मध्यमपुरुषद्विवचन में विभृथः रूप बनता है।

हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा वि भ्राजते दिव्य१ श्वाजनीव।
भद्रे क्षेत्रे निमिता तिल्विले वा सनेम मध्वो अधिगर्त्यस्य॥७॥

पदपाठ – हिरण्यनिर्णिक्। अयः। अस्य। स्थूणा। वि। भ्राजते। दिवि। अश्वाजनीऽइव॥ भद्रे। क्षेत्रे। निऽमिता। तिल्विले। वा। सनेम। मध्वः। अधिऽगर्त्यस्य॥७॥

अन्वय – हिरण्यनिर्णिक् अस्य स्थूणाः अयः, दिवि अश्वाजनीव विभ्राजते। भद्रे क्षेत्रे तिल्विले वा निमिता, मध्वः गर्तस्य अधि सनेम।

व्याख्या – इन दोनों का रथ सोने का बना हुआ है। वह बिजली के समान चमकता है। इस रथ के खम्भे किल आदि भी सोने के ही निर्मित है। ये सभी सोने के बने हुए है। यह उसके विकार है। उस प्रकार का रथ दिन में अन्तरिक्ष में घुमता है। यह क्या है। घोड़े के समान है। घोड़े व्यापकशील मेघ को कहते है। उनके द्वारा उत्पन्न की गई विद्युत्। और भद्र कल्याण स्तुत्ति में अथवा क्षेत्र में देवयजन में अथवा प्रसन्नता में। वा शब्द और अर्थ में, तिल स्नेहने (धा० ६।७६, १०।७३)। तिलु स्निग्धा भूमि है जिसकी वह क्षेत्र तिल्विल देवयजन का कहलाता है। घी सोम आदि के द्वारा स्निग्ध और कल्याणकारी क्षेत्र में निर्मित लकड़ी के खम्भे स्थित है। मधुर पूर्णगति से रथ अपने नेमी सहित घुमे। कर्म में षष्ठी। अधीपूरण को कहते है। अथवा रथ के ऊपर मधु सोमरस को स्थापित कर दो।

सरलार्थ – सोने से निर्मित इनके रथ की थुन लौह निर्मित है। वह रथ विद्युत् के समान अन्तरिक्षलोक में शोभित होता है। कल्याणकारी स्थान में अथवा देवपूजित स्थान में निश्चल स्तम्भ के समान मधुमय रथ के ऊपर सोम रस को स्थापित करते है।

टिप्पणियाँ

व्याकरण

- **हिरण्यनिर्णिक्** – हिरण्यस्य निर्णिक् इव निर्णिक् यस्य तत् हिरण्यनिर्णिक् इति बहुव्रीहिसमास।
- **भ्राजते** – भ्राज्-धातु से लट्-लकार आत्मनेपद प्रथमपुरुष एकवचन में भ्राजते रूप है।
- **निमिता** – निपूर्वकमि-धातु से क्तप्रत्यय करने पर सुप और डा आदेश होने पर निमिता रूप बना।
- **अधिगर्त्यस्य** – गर्ते इति अधिगर्तम् इति अव्ययीभावसमास, अधिगर्ते भवः इति अधिगर्त्यः, उस अधिगर्त का।

हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयः स्थूणमुदिता सूर्यस्य।
आ रोहथो वरुण मित्र गर्तमतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च॥८॥

पदपाठ – हिरण्यऽरूपम्। उषसः। विऽउष्टौ। अयःऽस्थूणम्। उत्ऽइता। सूर्यस्य॥ आ। रोहथः। वरुण। मित्र। गर्तम्। अतः। चक्षाथे इति। अदितिम्। दितिम्। च॥८॥

अन्वय – वरुण मित्र उषसः व्युष्टौ सूर्यस्य उदिता हिरण्यरूपम् अयःस्थूणं गर्तम् आरोहथः। अतः अदितिं दितिं च चक्षाथे।

व्याख्या – उषस और व्युष्टौ का प्रातःकाल में यह अर्थ है। सूर्य के उदय होने के काल को कहते है। वह ही काल प्रकारान्तर से कहते है। उस काल में हिरण्यरूप वाले रथ में बैठकर के हे वरुण हे मित्र तुम दोनों यज्ञ स्थल को प्राप्त होते हो। इसलिये अदिति अखण्डनीय भूमि को और दिति खण्डित प्रजादि को देखो।

सरलार्थः – हे मित्रवरुण तुम उषा के प्रारम्भ में सूर्य के उदय होने पर सोने से निर्मित लौहदण्डयुक्त रथ में बैठते हो। और अदितिऔर दिति को देखते हो।

व्याकरण

- **व्युष्टौ** – विपूर्वकोच्छ-धातु से क्तिन्प्रत्यय करने पर व्युष्टि रूप हुआ। उसका सप्तमी एकवचन में व्युष्टौ रूप बना।
- **आरोहथः** – आङ्पूर्वकरुह-धातु से लट्-लकार मध्यमपुरुषद्विवचन में आरोहथः रूप बना।
- **चक्षाथे** – चक्ष्-धातु से लट्-लकार मध्यमपुरुषद्विवचन में चक्षाथे रूप बना।

यद्बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू अच्छिद्रं शर्म भुवनस्य गोपा।
तेन नो मित्रावरुणाववविष्टं सिषासन्तो जिगीवांसः स्याम॥९॥

पदपाठ – यत्। बंहिष्ठम्। न। अतिऽविधे। सुदानू इति सुऽदानू। अच्छिद्रम्। शर्म। भुवनस्य। गोपा॥ तेन। नः। मित्रावरुणौ। अविष्टम्। सिषासन्तः। जिगीवांसः। स्याम॥९॥

अन्वयः – मित्रावरुणौ! सुदानू भुवनस्य गोपा वंहिष्ठं यत् अच्छिद्रं न अतिविधे शर्म नः अविष्टं सिषासन्तः जिगीवांसः स्याम।

व्याख्या – दाक्षायणयज्ञ में 'यद् बंहिष्ठम्' इति नवमी द्विताया अमावस्या में मैत्रावरुण की हवि के द्वारा अर्चना की जाती है। और सूत्र में कहा 'आ नो मित्रावरुणा यद्' बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू (आ० श्रौ० २।१४।११) इति। मैत्रावरुण में पशु हवि के द्वारा इनकी ही पूजा की जाती है। और सूत्र में कहा गया है 'यद्बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे' (आ० श्रौ० ३।८।१) इति।

हे शोभन दानियों, हे भुवन के रक्षक, तुम दोनों अतिशय महाँन बलशाली युक्त बाधा रहित और निर्दोष सुख को धारण करते हो। उस प्रकार के सुख को धारण करते हो, उसी प्रकार का सुख हमको विशेष रूप से प्रदान करो। हे मित्रावरुणहम इच्छित धन को पाने वाले और शत्रुओ को जितने वाले बने।

सरलार्थ – हे दानशील विश्व के रक्षक मित्रवरुणतुम दोनों अतिशय महान, बाधा रहित तथा विनाश हीन सुख के द्वारा हमारी रक्षा करो। इस प्रकार इच्छित धन को प्राप्त करके हम शत्रु को जितने वाले बने।

व्याकरण

- **बंहिष्ठम्** – बहुलशब्द से इष्ठन्प्रत्यय करने पर बहुलस्थान में बंहादेशे द्वितीया एकवचन में बंहिष्ठम् रूप बना।
- **सुदानू** – सु(शोभनम्) दानु ययोस्तौ सुदानू इति बहुव्रीहिसमासः।
- **अच्छिद्रम्** – अविद्यमानं छिद्रं यस्मिन् तत् अच्छिद्रम् इति बहुव्रीहिसमासः।
- **शर्म** – शृणाति हिनस्ति दुःखमिति शर्म।
- **सिषासन्तः** – सन्-धातु से सन्-प्रत्यय शतृप्रत्यय करने पर प्रथमाबहुवचन में सिषासन्तः रूप बना।
- **जिगीवांसः** – जि-धातु से क्वसुन्प्रत्यय करने पर प्रथमाबहुवचन में जिगीवांसः रूप बना।
- **स्याम** – अस्-धातु से विधिलिङि उत्तमपुरुषबहुवचन में स्याम रूप बना।

पाठगत प्रश्न 20.3

1. बर्हिः इस शब्द का क्या अर्थ है?
2. उर्वी शब्द का क्या अर्थ है?

3. इळासु इसका क्या अर्थ है?
4. धृतदक्षा इसका विग्रह क्या है और समास क्या है?
5. आसाथे ये रूप कैसे सिद्ध हुआ?
6. अक्रविहस्ता इसका क्या अर्थ है?
7. अक्रविहस्ता इसका विग्रह और समास क्या है?
8. सहस्रस्थूणम् इसका विग्रहऔर समास क्या है?
9. निर्णिगिति क्या है?
10. तिल्विलम् क्या है?
11. तिल्विलम् इसका विग्रह क्या है?
12. अधिगर्त्यः यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
13. सुदानू इसका क्या अर्थ है?
14. बंहिष्ठम् इसका क्या अर्थ है?
15. शर्म इसका क्या अर्थ है?

20.5 मित्रावरुण का स्वरूप

वैदिकयुग में प्रसिद्ध देवताओ में अन्यतमही वरुणदेवता है। वैदिकदेवता मण्डल में विशिष्ट स्थान में एक को यह वरुण सुशोभित करते है। फिर भी वरुणदेव को उद्दिश्य करके केवल बारह सूक्त ही सम्पूर्ण ऋग्वेद में वर्णन किया गया है। आच्छादन अर्थक वृधातु से वरुण शब्द निष्पन्न होता है। इसलिये भगवान् यास्क ने कहा - वरुणो वृणोतीति सतः। अर्थात् मेघ द्वारा यह देवता आकाश को ढकता है, उससे इसका नाम वरुण है। अथर्ववेद के भाष्य में सायणाचार्य ने कहा है - वरुण को रात्री के देवता के रूप में उनका वर्णन किया। मित्रशब्द की व्युत्पत्ति दिखाने के लिए भगवान यास्क ने कहा - मित्रः प्रमीतेस्त्रायते इति। अर्थात् मित्ररक्षा करते है मृत्यु से वर्षा के द्वारा सम्पूर्ण मनुष्यों की रक्षा करते है। अन्यत्र पुन उसी के द्वारा कहा गया है - मित्र जल को फैक करके अन्तरिक्षलोक को जाता है। मित्र ही जल वर्षा कारी देवता ऐसा यास्क व्याख्या से जाना जाता है। मित्र और वरुण यथाक्रम दिन और रात्रि के मान्य देवता है ऐसा आचार्य सायण ने कहा। उनकी उक्ति है -'मित्रः अहरभिमानिनी देवता वरुणः रात्र्यभिमानिनी। मैत्रं वा अहः वारुणी रात्रिः' ऐसी श्रुति है। ऋग्वेद में मित्र और वरुण का सम्मिलित रूप से अनेक स्तुति करते है। ये दोनों युग्म रूप से मित्रावरुण कहलाता है। मित्र और वरुण दोनों सूर्यरूप से ही ग्रहण किया है क्योंकि सूर्य ही दिन रात्री का स्रष्टा है। सूर्य की किरणें मेघ की रचना करती है और आकाश को मेघ आच्छादित करता है। यह मेघ अथवा अन्धकार ही वरुण का पाश के समान है। जिस सूर्यमण्डल में मित्रवरुण स्थित है, वह मण्डल हमेशा सत्यावृत होती है। उस स्थान से ही ऋत्विग अश्वगणों को अर्थात् सूर्य रश्मि को छोड़ता है।

मित्रवरुण जहाँ रहते है, उस स्थान में प्राय दस हजार किरणें एक साथ स्थित होकर के रहती हैं। मित्रवरुण की महानता से ही निरन्तर भ्रमणरत सूर्य दैनिक गति के द्वारा बन्ध जलराशि को छुडाने में समर्थ होती है। ये दोनों स्वय भ्रमण करने वाले सूर्य के प्रीतिदायक प्रकाश समूह को बढाता है। ये दोनों एक ही रथ और बे दोनों निरन्तर भ्रमण करते है। मित्रवरुण अपने सामर्थ्यवश से इस पृथिवी और स्वर्ग को धारण किया हुआ है। जलसमूह विग्रह को धारण करके इनका अनुसरण करते है, और प्राचीन नदियां इनके अनुग्रह से ही पुन प्रवाहित होती है। मित्रवरुण के रथ सोने से निर्मित है। यह रथ अन्तरिक्ष में विद्युत के समान शोभामान है। प्रत्येक ऊषा में मित्रवरुण सूर्य उदय से पूर्व लोहकील के साथ जुडा हुआ सुवर्ण रथ में आरूढ़ होकर के अदिति और दिति का अवलोकन करते है। दानशील विश्वरक्षक ये मित्रवरुण सुख को प्रदान करने में समर्थ हुए।

20.6 मित्रावरुणसूक्त का सार

मित्र और वरुण यथाक्रम दिन के रात्री के मान्य देवता है ऐसा आचार्य सायण ने कहा। उसको कहा गया है की – 'मित्रः अहरभिमानिनी देवता वरुणः रात्र्यभिमानिनी। मैत्रं वा अहः वारुणी रात्रिः' इति। ऋग्वेद में मित्र का और वरुण का सम्मिलित रूप से अनेक स्तुति की गई है। ये दोनों युग्मरूप से मित्रवरुण कहलाते है। मित्र और वरुण दोनों सूर्यरूप से ही ग्रहण किया जाता है, क्योंकि सूर्य ही दिन और रात्री के स्रष्टा है। आत्रेय-ऋषिदृष्टा मित्रावरुणसूक्त में उन दोनों वर्णन किया गया है। ऋत से ढके हुए मित्रवरुण का निवासस्थानभूत सूर्यमण्डल को मै देखता हूँ। वहा स्थित घोड़े के समूह के उपासक के स्तोता के रूप से वर्णन किया गया है। प्राय दश हजार सूर्य की किरने इकट्ठे रूप से उस स्थान में रहते है। देवो के रूपसमूह में श्रेष्ठ रूप को मै देखता था -इस प्रकार यजमानस्तुति करते है। मित्रवरुण की महानता से महानता अत्यन्त प्रशसा से, जो वश से ही निरन्तरभ्रमणरत सूर्य दैनिक गति से बन्ध जलराशी को आकर्षण करने में समर्थ होते है। ये दोनों देव स्वय भ्रमण करने के लिये सूर्य की प्रीतिदायक दीप्तिसमूह को बढाते है। ये दोनों ही समान ही रथ निरन्तर भ्रमण करते है। जो मित्रवरुण की स्तुति करते है, वे स्तोता इनके अनुग्रह से राजपद को प्राप्त करते है। अपने सामर्थ्यवश से ये पृथिवी और स्वर्ग को धारण इन दोनों ने किया है। यजमान प्रार्थना करते है की – हे जल प्रदाता देवो ! आप ओषधियों को सूर्य किरणों से और बढाओ, और वर्षा को करो। निपुणता से रथ में जोड़ गये आप अश्वगण को ले जाते है। जलसमूह विग्रह को धारण करके मित्रवरुण का अनुसरण करते है, और प्राचीन नदियों को इन दोनों के अनुग्रह से पुन प्रवाहित होते है।

यजमान प्रार्थना करता है की – हे अन्नसम्पन्न बलशाली मित्रवरुण! आप बहुत ही प्रसिद्धअपने शरीर के प्रकाश को बढाकर के,मन्त्ररक्षितयज्ञ के समान सम्पूर्ण पृथिवी को इनके संरक्षण में करके यज्ञभूमि पर मध्यस्थ में रथ पर आरोहण करो। यज्ञभूमि पर आप के जो यजमान है, उनकी रक्षा करो, सुन्दर स्तुति करने के कारण उनके प्रति आप दानशाली हो। क्योंकि आप दोनों ही क्रोध से रहित होने पर धन को हजार स्तम्भ के समान धारण करो।। मित्रवरुण के रथसोने से निर्मितहै। यह रथ अन्तरिक्ष में विद्युत के समान शोभामान है। हम यजमान जैसे उपयुक्तस्थान पर दलिया और लकड़ी सहित यज्ञभूमि पर रथ के ऊपर सोमरस को स्थापित करने में समर्थ हो उस प्रकार

टिप्पणियाँ

का अनुग्रह आप करो यह प्रार्थना की गई। दानशील विश्वरक्षक ये मित्रवरुणबिना किसी बाधा के सुख को प्रदान करने में समर्थ हो। प्रत्येक ऊषा पर मित्रवरुणसूर्योदय से परे लोहकील लगी हुई सुवर्णरथ पर आरूढ़ होकर के अदिति और दिति लोक का अवलोकन करते है। मित्रवरुणबिना किसी संकट के सुखप्रदान करने में समर्थ है। इसलिये यजमान प्रार्थना करते है की -आप हमारे लिये उस प्रकार का सुख दीजिये।

मित्रावरुणसूक्त का अंश में पाठसार

इस पाठ में दो सूक्तो की आलोचना करते है। उनमें विष्णुसूक्त का सार आदिपूर्वार्ध में कह दिया है। उत्तरार्थ में तो मित्रावरुणसूक्त की आलोचना की। इसलिए उसका संक्षेप से सार यहाँ प्रदान रूप से दिया गया है।

आदिसूक्त मित्रावरुणसूक्त। विश्व में भाई किस प्रकार का होना चाहिए उसको बताने के लिये इस सूक्त को लिखा गया है। यहाँ मित्र प्रानो की रक्षा करता है और वरुणजल को धारण करते है। और वरुणजलधारकरूप से अथवा वर्षा कर्ता रूप से प्रतिपादित किया है। ऋग्वेद के ऐतरेयब्राह्मणग्रन्थ के अनुसार से मित्र रात्रिरूप से और वरुण दिनरूप से प्रतिपादित किया। इस मित्रावरुणसूक्त के आत्रेय श्रुतिविद् ऋषि, मित्रावरुण देव, त्रिष्टुप् छन्द है।

पाठांत प्रश्न

विष्णुसूक्त

1. विष्णुसूक्त का सार लिखो।
2. विष्णोर्नु कं वीर्याणि ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
3. प्र तद्विष्णु: ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
4. प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
5. यस्य त्री पूर्णा ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
6. तदस्य प्रयमभि पाथो अश्याम् ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
7. ता वां वास्तून्युश्मसि ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।

टिप्पणियाँ

मित्रावरुणसूक्त

8. मित्रावरुणसूक्त का सार लिखो।
9. ऋतेन ऋतमपिहितम् ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
10. अक्रविहस्ता सुकृते ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
11. आ वामश्वास: ... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।
12. यद्बंहिष्ठं नातिविध`... इत्यादिमन्त्र की व्याख्या करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

20.1

1. ऋषिदीर्घतमा औचथ्य, छन्द विराट् त्रिस्टुप्, देवता विष्णु।
2. नु, कम्।
3. व्यापकशील।
4. पराक्रम कार्यो को।
5. अनेक रूप में निर्मित किया।
6. लोकवाची है।
7. तीन प्रकार से।
8. कुत्सितहिंसादि का कर्ता अथवा दुर्गमप्रदेश में रहने वाला।
9. हमारे द्वारा उत्पन्न किये गये बल महत्त्व को।
10. नीचे के अतलवितल आदि सात भुवन की उत्पत्ति।
11. धारण किया।
12. त्रयाणां धातूनां समाहार।
13. अन्तरिक्ष को।
14. सभी श्रुतिस्मृतिपुराण आदि में प्रसिद्धद्योतन अर्थ है।
15. कामना करता हूँ।

टिप्पणियाँ

20.2

1. आत्रेय श्रुतविद् ऋषि, मित्रावरुण देवता, त्रिष्टुप् छन्द।
2. ध्रुव स्थिर।
3. ढका हुआ।
4. जल को।
5. स्था-धातु से लिट्-लकार प्रथमपुरुषबहुवचन में।
6. निरन्तर गमन करना।
7. ङीप् प्रत्यय है।
8. पू-धातु से 'अच इः' इस औणादिकसूत्र से इप्रत्यय करने पर।
9. धे-धातु से।
10. जीरं दानू ययोस्तौ इति बहुव्रीहिसमास।
11. शीघ्र प्रदान करना।
12. पिव-धातु से।
13. अश्वाः लौकिक रूप है।
14. धृ-धातु से णिच लङ्-लकार मध्यमपुरुषद्विवचन में।
15. निर् पूर्वकनिज्-धातु से क्विप्प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में।

20.3

1. यज्ञ।
2. पृथिवी।
3. यागभूमि में।
4. धृतः दक्षः ययोस्तौ धृतदक्षौ इति बहुव्रीहिसमासः।
5. आस्-धातु से आत्मनेपद लट्-लकार मध्यमपुरुषद्विवचन में।
6. उदार हाथो से।
7. न क्रविः अक्रविः, अक्रवी हस्तौ ययोस्तौ अक्रविहस्तौ इति बहुव्रीहिः।

8. सहस्रं स्थूणा: यस्य तं सहस्रस्थूणम् इति बहुव्रीहिसमास:।
9. रूपनाम।
10. देवयजनस्थान को।
11. तिलु: स्निग्धा इला भूमिर्यस्य तत् क्षेत्रम्।
12. गर्ते इति अधिगर्तम् इति अव्ययीभावसमास:, अधिगर्ते भव: इति अधिगर्त्य:।
13. शोभनदान वाले।
14. बहुल रूप से।
15. सुख अथवा घर को।

॥ बीसवाँ पाठ समाप्त ॥